-: द्वितीय परिच्छेद :-

Chapter - 2

: द्वितीय परिच्छेद :

Chapter- 2

परमाल रासो की प्रामाणिकता :-

"परमाल रासो" का रचयिता जगनिक नामक कवि माना जाता है, जो महोबा [उत्तर प्रदेश राज्य] के राजा परमर्दि देव का आश्रित कवि था । उसने इस काव्य में आल्हा और ऊदल नामक दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाइयों का वर्णन किया है । इसका रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल माना जाता है । इसमें वीर भावना का जितना प्रौढ़ रूप मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है ।

परमाल रासो [आल्ह खण्ड] की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध न होने के कारण इतिहासकारों और विद्वानों में कुछ भ्रांतियाँ पनप रही है जिनका संकेत करना परमावश्यक है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने "परमाल रासो" को आल्ह-खण्ड का मूलरूप समझ लिया है, जिससे विद्वानों और पाठकों का एक वर्ग उनका अन्धानुकरण कर रहा है । कुछ ने तो "परमाल रासो" को [डॉ0 श्याम सुन्दर दास द्वारा संपादित एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित] देखा तक नहीं है । वास्तविकता तो यह है कि यह ग्रंथ आल्ह खण्ड का ही पर्याय है । "परमाल रासो" नामकरण का आधार काल्पनिक है । आल्हा-ऊदल दो वीर थे, जो परमाल या परमर्दि देव के सेनापति थे । जिनका अस्तित्व भी राजा के संरक्षण में संभव था । अतः जगनिक ने ग्रंथ का नायक परमाल को ही मानना उचित समझा, जबकि उनकी प्रभुता का कारण यही दो वीर थे ।

विद्वानों का दूसरा वर्ग यह मानता है कि आल्ह-खण्ड, पृथ्वीराज रासो का एक भाग है जिसे अल्हैतों द्वारा आल्हखंड के रूप में विकसित कर दिया गया । पृथ्वीराज रासो के महोबा समय की कथा दिल्ली का एक पक्ष लेकर लिखी गई है । परन्तु आल्हखंड में महोबा का पक्ष लिया गया है । इसी तरह और भी भ्रांतियाँ हो सकती है, लेकिन मेरा आग्रह है कि जो भी निष्कर्ष या निर्णय लिए जाएं, ग्रंथों पर पूरा चिन्तन-मनन के उपरान्त ही लिए जाएं ।

संदर्भ : आल्हखंड की खोज : कुछ समस्याएँ, डॉ0 नर्मदाप्रसाद गुप्त, पृ.सं. 9-10.

वस्तुतः आल्हखंड [परमाल रासो] के संदर्भ में महोबा समय, आल्ह-राछरो आदि ग्रंथों के साथ बुन्देलखंड की दीर्घ रासो परंपरा के अध्याहार की आवश्यकता है। मध्ययुग में इस जनपद के अन्य वीर काव्यों में भी आल्हा-ऊदल के कुछ प्रसंगों का वर्णन मिलता है, एवं आल्हखंड के रचनाकार के प्रति श्रद्धा का उल्लेख हुआ है। उन सब को भी ध्यान में रखना अनिवार्य होगा। आल्हखंड के बाद की लिखित और मौखिक आल्हा-परंपरा आल्हखंड की बुन्देली, कन्नौजी, भोजपुरी, अवधी आदि लोक भाषाओं की वर्णनाएँ तथा अल्हैतों की लम्बी परंपरा से प्रचलित लिखित वर्णनाएँ आदि सभी के सूक्ष्म परीक्षण से किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन इतिहास और संस्कृति का पूरा-पूरा अध्ययन भी अपेक्षित है। आशय यह है कि पूर्ण परिज्ञान के बिना कोई भी निर्णय लेना उचित नहीं है।

परमाल रासो [आल्हखंड] के प्रचलित रूप :-

परमाल रासो या आल्हखंड के विविध रूप प्रचलित हैं। एक ओर प्रकाशित है आल्हखंड, जिनमें मनमाना रूपान्तर और विस्तार है और जिन्हें अनजान पाठक पढ़ता-गाता है एवं अशिक्षित ग्राम-वासियों को सुनाकर, उन्हें इसी रूप का आदी बनाता है, तो दूसरी ओर है, अल्हैतों द्वारा रचे गए आल्हा, जो प्रत्येक अल्हैत कवि की व्यक्तिगत प्रतिभा पर आधारित है और गुरु से शिष्य तक कुछ घटा-बढ़ा कर अभी तक चले आ रहे हैं। तीसरा रूप है लोकप्रचलित आल्हा का सैरा, जो बहुत पहले से लोक के मुख में जीवित रहा है और जिसमें हर समय कुछ न कुछ रूपान्तर हुआ होगा। चौथा रूप मिश्रित आल्हा, जिसमें कुछ पुरानी साखियाँ, वीररस परक छन्द, स्वरचित वर्णनात्मक या श्रृंगार परक छन्द, "पृथ्वीराज रासो" या "परमाल रासो" के चुने हुए छन्द आदि के साथ आल्हखंड के आल्हा छन्दों को गाया जाता है। पाँचवे रूप में किसी प्रसिद्ध कवि शिवदत्त कमरिया या नवलसिंह प्रधान की आल्हा लोकप्रिय है। इनकी आल्हा को स्थान विशेष के अल्हैतों ने उसे अपनी ही विशिष्ट गायन-शैली में ढाल लिया है और उसका गायन करते हैं।

इस प्रकार आल्हा के गायन के अनेक रूप बुन्देलखण्ड एवं उत्तर भारत के

स्त्रोत : जनसंपर्क - श्री दीनदयालु वर्मा, प्रवक्ता, सनातन धर्म इन्टर कॉलेज [जालौन] उ.प्र.।

अनेक जनपदों में प्रचलित हैं । अब प्रश्न उठता है कि इन रूपों में किसे प्रामाणिक माना जाए ? यह खोज का विषय है । लोक की वास्तविक या असली आल्हा से अवगत कराके भ्रम को दूर करने का निदान सामने लाया जाए, यह अध्यावसाय का काम है ।

परमाल रासो [आल्हखंड] के मूल रूप की खोज :-

आल्हखंड के मूल रूप की खोज करना एक विकट समस्या है । उस समस्या पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है । सर्वप्रथम तो यह निश्चित करना होगा कि आल्हखंड मूलरूप में प्रबन्ध है या गीत या लोकगाथा ?

कुछ विद्वानों की धारणा यह है कि यह गीतात्मक रूप में लिखा गया था और कुछ इसे प्रबन्ध-पद्धति में रचित मानते हैं । आल्हखंड की कथाओं से यह सिद्ध होता है कि उसका मूलरूप प्रबन्ध काव्य का ही है क्योंकि इसके समर्थन में कुछ तर्क इसकी पुष्टि करते हैं । पहला तो यह कि महाकवि जगनिक ने प्रत्यक्षदर्शी ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर काव्य रचना की है । अतएव इसे लोकगाथा नहीं कहा जा सकता और गीतों में इतना विस्तृत कथानक समाहित होना न केवल कठिन है अपितु असंभव है ।

दूसरे, यदि यह साहित्यिक प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखा गया होता, तो इसका लोकमुख में जीवित रहना संभव न होता । इसलिए मैं तो यही मानता हूँ कि "परमाल रासो" लोक कवि जगनिक द्वारा लोक काव्य शैली में रचा गया "लोकप्रबन्ध काव्य" है । बुन्देलखंड के जनपदों में आदि काल से लेकर वर्तमान तक निरंतर प्रवाहमान लोक काव्य-परंपरा के दर्शन होते हैं, यहाँ तक कि रासो भी बुन्देली भाषा और लोक काव्य शैली में रचे गए हैं । मध्यकाल में लिखे गए अनेक नाटक "सत्रो और लड़ाई" इस बात के प्रमाण है कि इतिहास और वीररस परक कथा का लेखन लोक काव्य में होता था और गायक गाँव-गाँव जाकर उसे सुनाते थे । जगनिक ने भी अपने लोक प्रबन्ध को लोक के सामने गा-गाकर सुनाया होगा और आल्हखंड लोकमुख में समाहित हुआ होगा । वास्तविकता यह है कि आल्हखंड की लोकप्रियता का प्रमुख कारण उसकी लोकानुभूति, लोकाभिव्यक्ति और गीतात्मकता है ।

द्रष्टव्य : आल्हखंड की खोज : कुछ समस्याएँ, डॉ0 नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ.सं. 15.

वर्तमान लोक प्रचलित विविध रूपों में आल्हखंड {परमाल रासो} के मूलरूप को खोजना अत्यन्त कठिन है। उनमें दृष्टिगोचर समानताओं के आधार पर पुराने जनप्रिय या जनप्रचलित रूप का अनुमान लगाया जा सकता है। इस रूप के निर्धारण के लिए वस्तु, भाषा, शैली और छन्द की दृष्टि से एक निश्चित कसौटी आवश्यक है। आल्हखंड के सभी युद्ध-वर्णनों में कुछ ऐसी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है जिनके विश्लेषण से निःसंदेह निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। विविध-रूपों की वस्तु में एक अद्भुत समानता है, जिसे आसानी से परखा जा सकता है। यह भी सत्य है कि मूल आल्हखंड की भाषा बुन्देली {बनाफरी} थी, जो तत्कालीन मध्य एशिया के निकट और अपभ्रंश से दूर थी।

इसी प्रकार उसकी शैली लोक काव्यात्मक थी और वह आल्हछन्द में लिखा गया था। आल्हखंड के प्रारम्भिक छन्द में उल्लेख है—

श्री गनेश गुरूपद सुमरि, इस्टदेव मन लाय।
आल्हखंड बरनन करत, आल्हा छन्द बनाय।

इन आधारों पर कम से कम ऐसे लोक रूप को सामने लाया जा सकता है, जो मूलरूप के अधिक निकट है। जिस प्रकार अन्य रासो काव्यों में समय तथा गीतात्मकता के आधार पर उनके स्वरूप में अभिवृद्धि होती गई, उसी प्रकार "परमाल रासो" {आल्हखंड} का रूप भी लोक शैली के रूप में ढलता गया और यही कारण है कि इसमें विविध रूप हमारे सामने आते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह आधार-हीन काव्य-ग्रंथ है। बिना आधार के कोई भव्य इमारत या इमारत का बनाया जाना ही संभव नहीं है।

आल्हा के विविध भाषायी रूप :-

इस लोक काव्य की विकसन-शीलता जहाँ लोक प्रचलित रूपों में दिखाई पड़ती है, वहीं विविध लोकभाषाओं के रूप भी दृष्टिगोचर होते हैं। कन्नौजी, अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, बघेली, बैसवाड़ी, भदावरी आदि अनेक बोलियों में इसका वर्णन मिलता है। विभिन्न वर्णनों के तुलनात्मक अध्ययन-अनुशीलन से ही आल्हखंड की लोक द्वारा गृहीत वस्तु का निराकरण किया जा सकता है। यह सहज एवं स्वाभाविक है कि जब कोई लोक काव्य विभिन्न क्षेत्रों के संपर्क में आता है तो

{1} वही : पृ.सं. 8, 9.

उसमें क्षेत्रीय बल समाहित हो जाते हैं । यह तत्त्व इस प्रकार समाहित हो जाते हैं कि वे उसी लोक काव्य के से लगने लगते हैं । आल्हा साहित्य की लोक गाथा के साथ भी कुछ ऐसा ही है ।

इस लोक ग्रंथ में समाहित क्षेत्रीय संस्कृतियों के रूप को हृदयंगम रखते हुए यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि यह एक सार्वभौमिक कृति है जिसकी लोकप्रियता स्थल और काल से परे हो गई है । इस लोक काव्य के विश्लेषण या विवेचन से इसके परिवर्तन की प्रक्रिया, वस्तु के सर्वमान्य लोक तत्त्व आदि के संबंध में कुछ सर्वमान्य निर्णय अवश्य निकलेंगे, जो "परमाल रासो" के लोकप्रियता के प्रतिमानों में अपना स्थान सुरक्षित रखने के अधिकारी होंगे ।

परमाल रासो की समीक्षा के प्रश्न :-

परमाल रासो या आल्हखंड के समीक्षकों के सामने सबसे कठिन प्रश्न यह है कि किसकी समीक्षा की जाए । मूल प्रति उपलब्ध नहीं है, लोक प्रचलित रूप अवश्य मिलते हैं । उन्हीं का पाठ-संपादन कर एक सर्वमान्य पाठ का प्रकाशन आवश्यक है । मैं निष्ठापूर्वक इस कार्य में लगा हूँ तथा उन तथ्यों को उद्घाटित कर सकूँगा, जो अब तक प्रकाश में नहीं आए हैं । बुंदेली {बनाफरी} वर्णनों के जितने रूप मिलेंगे और साथ ही वे जितने प्राचीन होंगे, उनका पाठ उतना ही प्रामाणिक सिद्ध होगा । लेकिन जब तक ऐसा पाठ सामने नहीं आता, तब तक किसी भी उपलब्ध पाठ को समीक्षा का विषय बनाया जा सकता है ।

रचनाकार जगनिक के संदर्भ में मतभेद हैं, परन्तु प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर शोध को गति मिलती रहना जरूरी है । बनाफरी {बुन्देली} में लोककाव्य रचने वाला कवि बनाफरी क्षेत्र का ही रहा होगा । इसमें विवाद के लिए कम स्थान है । हिन्दी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल, आदि नामों के साथ चारण या भाट काल जोड़ा गया है । इस बात को दृष्टिगत रखते हुए, प्राचीन काल या प्राचीन काव्य ग्रंथों में कवि को भाट कहा गया है । तब उसे क्षत्रिय मानना भ्रमपूर्ण ही होगा । समीक्षा के अन्य विषय जैसे- ऐतिहासिकता, कथावस्तु, कथानक रूढ़ियाँ, पात्र योजना, भावसौष्ठव, भाषा, काव्यरूप आदि पर विचार किया जाना सर्वथा उचित और उपादेय होगा । वस्तुतः जितने पाठों की समीक्षा जितनी विशिष्टता से होगी, आल्हखंड की मूलभूत विशेषताएँ, सीमाएँ और शक्तियाँ प्रकाश में आ सकेंगी ।

अनुशीलन के तत्वावधान में यह सावधानी अवश्य रखनी होगी कि लोक-काव्य की समीक्षा, लोक काव्य की दृष्टि से की जाए । लोक काव्य का अपना काव्यशास्त्र होता है, उसी के मापदण्डों पर "परमाल रासो" की समीक्षा हो सकती है । लोक काव्य का अपना सौष्ठव होता है, उसकी शक्तियाँ और सीमाएँ होती है और इसीलिए वह लोककाव्य है । सामान्यतः साहित्य के पंडित लोक काव्य को एक सामान्य दृष्टि से समझने का प्रयास करते हैं । उनके अनुसार यह एक बहुत ही हल्की एवं सस्ती वस्तु है । लोक काव्य में यदि शब्द भाजा तद्भव है, तो उसका अपना महत्व एवं अपनी प्रकृति है । यदि किसी पंक्ति की आवृत्ति होती है तो वह उसकी अपनी विशेषता है । इसीलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि इसे लोक-शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा ।

आल्हखंड की समीक्षा के तत्वावधान में अधोलिखित तत्व भी विचारणीय हैं :-

पहला तो यह कि उक्त लोक काव्य का रचयिता जगनिक राजा चन्देल-नरेश परमर्दि देव का आश्रित होता हुआ भी उनकी प्रशस्ति में या उन्हें प्रसन्न करने या उनके मनोरंजन के लिए काव्य रचना नहीं करना चाहता था, अन्यथा वह सच्चे शूरवीरों की गाथा प्रस्तुत न करता । हिन्दी के आदिकाल में ऐसा कवि-कर्म दुर्लभ-सा प्रतीत होता है । यहां तक कि भूषण और लाल कवि जैसे राष्ट्रीय कवि भी आश्रयदाता की प्रशस्ति से नहीं बचे । अतएव आल्हखंड के रचनाकार की रचना-धर्मिता का एक अद्भुत व्यक्तित्व सामने आता है ।

दूसरा यह कि परमाल रासो {आल्हखंड} हिन्दी का प्रथम लोक काव्य-ग्रंथ माना जाता है । विद्वानों ने जिन ग्रंथों को प्रथम सिद्ध करने की कोशिश की है, उन्हें दूसरों ने अपभ्रंश कहकर असिद्ध कर दिया है । वास्तव में हिन्दी का उदय पहले बोलियों के रूप में ही हुआ था । अतएव बोली का या लोकभाषा का ग्रंथ ही उसका पहला ग्रंथ रहा होगा । अनेक विद्वान भी इस खोज में सक्रिय हैं कि मध्यप्रदेश में मध्यदेशीय ग्रंथ के रूप में उसका प्रथम उद्भव हुआ और आल्हखंड मध्यदेशीय बुंदेली की ही रचना है, यह भी उसके पक्ष में है । इसलिए इतिहासकारों को इसे मानने में संकोच नहीं करना चाहिए ।

द्रष्टव्य : आल्हखंड की खोज : कुछ समस्याएँ, डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त, पृ.सं. 13.

तीसरे, लोकप्रियता में आल्हखंड क्षेत्रीय परिधि से परे संपूर्ण देश में फैल गया है । अन्य लोक भाषाओं की वर्णनाएँ इसका प्रमाण है कि वे उनके लोक में उतनी ही लोकप्रिय हैं, जितनी बुन्देलखंड क्षेत्र में । तुलसी के रामचरित मानस के विरुद्ध तो कुछ सवाल उठने लगे हैं, परन्तु आल्हखंड को प्रत्येक वर्ग, धर्म और जाति के लोगों ने अपना लिया है । आखिर ऐसी सार्वभौमिकता और सार्वकालिक प्रसिद्धि का कारण क्या है ? निश्चय ही विचारणीय तथा शंका निवारक है ।

लोक ने ही नहीं, विद्वानों के वर्ग ने भी आल्हखंड को उतना ही प्रेरणाप्रद माना है, जितना अन्य वीर काव्यों को । वह उनके काव्य का प्रेरणास्त्रोत बनकर उपजीव्य ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है । उसकी वस्तु-भाषा शैली, छन्द बंध आदि का प्रभाव अपरिमित है । मध्ययुग के रासो एवं चरितकाव्य, भक्तिमूलक प्रबन्ध और प्रेमाख्यान काव्य तथा रीति-श्रृंगार परक काव्यशैलियाँ आल्हखंड से प्रभावित हुई है । यहाँ तक कि आल्हखंड की शैली में लिखे जाने के कारण ग्रंथों का नामकरण "आल्ह" लगाकर किया गया है । जैसे, आल्ह रामायण, आल्ह महाभारत आदि । वर्तमान काल में अनेक खंडकाव्य, नाटक और उपन्यास रचे गए तथा वर्तमान विषयों जैसे चुनाव आदि के बारे में "आल्हा" की शैली आज भी लोकप्रिय है । आल्हखंड की लिखित और मौखिक परंपरा का तो पार ही नहीं हैं । तात्पर्य यह है कि हिन्दी काव्य और अन्य विधाओं पर आल्हखंड के प्रभाव की भूमिका एक प्रामाणिक तत्व की उन्नायक है ।

<u>परमाल रासो {आल्हखंड} की लिखित एवं मौखिक परंपराएँ :-</u>

आल्हखंड की लिखित परंपरा की दो धाराएँ हैं । एक तो वह, जो आल्हखंड की वस्तु और शैली दोनों का अनुसरण करती है और जिसमें हरेक कवि ने अपनी मौलिकता का योग दिया है । इसमें शिवदा कमरिया {फरगावाँ} और देशराज भट्ट जिगनी के नाम प्रसिद्ध हैं । ऐसे रचनाकारों और उनकी कृतियों को प्रकाश में लाया जाना चाहिए । इस तथ्य पर साहित्यकार विचारशील हैं । दूसरी वह है जिसमें कवियों ने आल्हखंड की वस्तु के आधार पर स्वतंत्र रचनाएँ की हैं । इस परंपरा में महोबा समय, परमाल रासो, आल्हा राछरो, वीर विलास आदि मध्ययुग की

स्त्रोत : क्षेत्रीय व्यवहारिक ज्ञान एवं जनसंपर्क ।

तथा महोबा खंड काव्य, ऊदल नाटक, आल्हा उपन्यास आदि आधुनिक युग की न जाने कितनी कृतियाँ आती हैं । इन सबका मूल्यांकन अवशेष है ।

दूसरी परंपरा है- मौखिक, जो अल्हैतों और लोक दोनों में सुरक्षित है । अल्हैतों की अपनी अलग-अलग परंपरा गुरु से शिष्य तक चलती हुई आज तक बनी हुई है । उसके सर्वेक्षण से कई रहस्यों का उद्घाटन हो सकता है । एक आल्हा गायक से साक्षात्कार करने से ज्ञात हुआ है कि- पीशा साईं चेतेला एक पुराने अल्हैत थे । उनके चार शिष्य हुए है- वे हैं- कालीसिंह कैलिया, साँतीसिंह उमरी, धनीराम ब्रह्मभट्ट और भीखा अहीर । फिर उनके शिष्यों की अलग-अलग शाखाएँ चलीं । यह इस प्रकार गुरु से शिष्य तक चला आता दाय आज तक जीवित रह सकता है । वस्तुतः अल्हैत नाम अनुकरण कर्ता ही नहीं, वरन् वह परिवर्धन कर्ता भी हैं, परन्तु इसके मूलाधार को नकारा नहीं जा सकता ।

एक अतिरिक्त परंपरा, जो दृष्टिगोचर होती है- वह फड़बाजी की । 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में जब फाग, सैरा आदि की प्रतियोगिताएँ उत्कर्ष पर थी, तब आल्हा की भी प्रतियोगिताएँ शुरू हुईं । यह खुली प्रतियोगिता थी, जिसमें एक अल्हैत की प्रस्तुति के बाद दूसरा आता । इस प्रकार एक दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी होता । हर अल्हैत का अपना अखाड़ा-सा होता है, जो प्रतियोगी-भावना से गायन करता है । इस प्रकार स्वतंत्र रचनाक्रम में वर्णनों को चमत्कारिकता एवं रोचकता प्रदान करने के लिए अल्हैतों ने अनेक काल्पनिक एवं मार्मिक घटनाओं का अपनी रचनाओं में समावेश किया । सन् 1948 के लगभग चरखारी (म.प्र.) के मेले में प्रसिद्ध अल्हैत शिवरामसिंह ने ऊदल विवाह के प्रसंग में छोटी-छोटी घटनाओं के वर्णनों की ऐसी लड़ी पिरोई थी, कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए थे । आल्हा की इस प्रतिद्वन्द्विता और प्रभावक्षमता का प्रश्न भी विचारणीय ही नहीं, प्रामाणिकता का समर्थक है । आल्हखंड की लोकप्रियता और प्रभावशीलता की असाधारण शक्ति ने ही उसे जन-जन का काव्य बना दिया है ।

प्रासंगिकता का सवाल :-

आजकल किसी भी कवि की रचना के विषय में प्रासंगिकता के प्रश्न उठाने की एक परंपरा-सी चल पड़ी है । वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आदिकाल और भक्तिकाल के

साहित्यकारों की रचनाओं की प्रासंगिकता खोजी जा रही है । अतएव "परमाल रासो" के बारे में ऐसा प्रश्न पूछा जाना स्वाभाविक ही है । इसके उत्तर में पहले यदि एक और प्रश्न पर विचार किया जाय, तो उत्तम होगा, कि- आल्हा को आज भी लोक क्यों अपना रहा है, तो शायद सारा कुहरा अपने आप ही साफ हो जायगा ।

परमाल रासो या आल्हखंड उर्जा का महाकाव्य है । उसमें चित्रित व्यक्तिगत वीरता का इतना तीव्र प्रवाह है कि वह तत्कालीन परिस्थितियों और संदर्भ को लाँघकर सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक बन गया है । उसके नायक आल्हा-ऊदल अपनी वीरता की आदर्श ऊँचाई के कारण समाज की शक्ति और चेतना के केन्द्र बिन्दु बन गए हैं । अस्तु, उनकी जीवन शक्ति, लोक की शक्ति बन गई है । आज का लोक उनके व्यक्तित्व से प्रेरणा पाकर अपने अन्तः हृदय में प्रस्फुटित ओजस्विता का अनुभव करता है । आज के नैराश्य और अनास्था के युग में साहस और उल्लास के स्वरों का जितना महत्व है, उतना ही आल्हा के संदेश का । परिस्थितियों और जीवन की विषमताओं से जूझने की जब तक आवश्यकता महसूस की जाती रहेगी, आल्हखंड का जुझारू शौर्य तब तक अपनी अस्मिता बनाए रखेगा ।

आज आल्हखंड देशगत सीमाओं को पार कर गया है । डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा था कि--"अंग्रेजों को संस्कृत के कृत्रिम महाकाव्यों की अपेक्षा इस लोककाव्य ने अधिक प्रभावित किया है । आजकल के लोकप्रिय महाकाव्यों जैसे- तुलसी का "राम-चरित मानस" तक की प्रभावक्षमता पर प्रश्नचिह्न लगने लगे हैं, पर आल्हखंड का प्रभाव लोक पर ऐसे छाया है कि वह बाहर का न होकर भीतर का लगता है ।"॥1॥

मैं समझता हूँ, कि परमाल रासो की अपनी भीतरी उर्जा और असाधारण प्रेषणीयता के कारण लोक को सदैव उर्जस्वित करता रहेगा । इसलिए उसकी उपादेयता हर समय असंदिग्ध रहेगी ।

परमाल रासो का इतिहास या ऐतिहासिकता :-

चन्देल राजवंश-परंपरा : कालंजर का दुर्ग अपनी राजनीतिक महत्ता के कारण संपूर्ण

- -

॥1॥ लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया : सर जार्ज ग्रियर्सन – पृ.सं. 48.

भारतवर्ष में प्रख्यात रहा है । यही कारण है, कि मध्यकाल का प्रत्येक महत्वाकांक्षी शासक इसे अपने अधिकार में लेना चाहता था । इसलिए चंदेल वंशी नरेशों के लिए यह बहुत स्वाभाविक था कि वे इस दुर्ग पर अपना अधिकार करके बढ़ती शक्ति और अधिपत्य का परिचय दें । यह कार्य चंदेल वंशी प्रतापी नरेश यशोवर्मन ने किया । सम्वत् 1011 का खजुराहो {म.प्र.} का अभिलेख इसका साक्ष्य है कि—"राज समाज के अग्रिणी यशोवर्मन ने सरलता से ही शंकर के निवासभूत कालंजर गिरि पर विजय प्राप्त कर ली, जो इतना ऊँचा था कि मध्याह्न में भी सूर्य की गति को बाधित करता था ।"{1} सन् 950 के बाद यशोवर्मन का यशस्वी पुत्र धंग राज्यासीन हुआ और इस प्रकार कालंजराधिपति का स्पृहणीय विरुद पूर्ण रूप से चन्देल नरेशों को प्राप्त हो गया । तत्कालीन राजकीय शौर्य और उत्कर्ष की प्रतीक इस क्षेत्र की तीनों महत्वपूर्ण राजधानियों- कालंजर, महोबा और खजुराहो पर प्रतापी नरेश धंग का आधिपत्य स्थापित हो गया । दसवीं शती का यही काल सांस्कृतिक निर्माण की दृष्टि से उत्कर्ष का काल था, जिसके प्रमाण हैं संपूर्ण विश्व में अपना वैभव बिखेरती चंदेल वंशी नरेशों के कलाप्रेम का गीत गाती खजुराहो की जीवंत मूर्तियाँ । तब से लेकर आज तक अनेक उत्थान-पतन और संघर्ष की विभीषिकाओं से झुलसती चंदेल राज्य-श्री धंग के बाद क्रमशः गंड, विद्याधर, विजयपाल देव, देव वर्मन देव, कीर्ति वर्मन देव, सल्लक्षण देव, जय वर्मन, पृथ्वी वर्मन से होती हुई अत्यन्त प्रभावशाली शासक मदन वर्मन देव को पाकर हर्षित हुई ।

मदन वर्मन देव का शासन काल सन् 1129 ई0 से 1165 तक माना जाता है । इसके बाद आता है परमर्दि देव का शासन काल, जिसके अमात्यवत्सराज ने प्रस्तुत रूपकों की रचना की । परमर्दि देव के उत्तराधिकारी त्रैलोक्य वर्मन देव का शासन काल लगभग सन् 1205 से सन् 1241 तक था । वत्सराज के रूपकों में केवल "किरातार्जुनीय व्यायोग" त्रैलोक्य वर्मन देव के शासन काल में अभिनीत हुआ । शेष पाँच रूपकों का सम्बन्ध परमर्दि देव के साथ संकेतित किया गया है ।{2} इससे स्पष्ट होता है कि वत्सराज का अधिकांश कार्यकाल परमर्दि देव के समय में बीता । मदन-वर्मन की भाँति परमर्दि देव भी अतिशय वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने के आदी थे ।

- -

{1} चन्देल और उनका राजत्व काल : श्री केशवचन्द्र मिश्र, पृ.सं. 73-134.
{2} द्र0, रूपकषट्कम् : पृ. 23, 76, 118, 150, 229.

"प्रबन्ध चिंतामणि" के अनुसार, भोजन परोसते समय किसी त्रुटि के कारण क्रुद्ध होकर प्रायः रोज एक-न-एक रसोइया को वे तलवार से मौत के घाट उतारते थे, जिसके कारण उन्हें"कोप कालानल"की उपाधि मिल गई थी ।§1§ लेकिन इस प्रकार के संकेत"रूपक षटकम्" में नहीं मिलते । रूपकों के अनुसार परमर्दि देव अतिशय दानी, कला, नाट्य अभिनय और साहित्य में विशेष अभिरुचि रखने वाले यशस्वी प्रशासक थे ।§2§

इस प्रकार कालंजर लगभग 9वीं शती से 13वीं शती तक कला और काव्य के अनुपम साहचर्य के साथ मध्यप्रदेश की इस बुंदेली धरती का शौर्य केन्द्र रहा । लेकिन मध्ययुगीन राजनीतिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करते हुए यह कहना अनुपयुक्त न होगा, कि इस बीच कई बार भयंकर तूफानों से कालंजर-शौर्य दीपक बुझते-बुझते बचा और चंदेल राज्यलक्ष्मी भी अपहृत होते-होते बची । इतिहास साक्षी है, कि महाराज हर्षवर्धन के बाद भारत की एकता दम तोड़ चुकी थी । संपूर्ण देश छोटे-छोटे राज्यों में विकेन्द्रित हो गया था । राजपूत शासकों का परस्पर विद्वेष और स्वार्थभरा संघर्ष अराजकता की स्थिति का कारण बना । परिणाम-स्वरूप उत्तर-पश्चिम से चला तुर्क आक्रमण-कारियों का प्रभंजन प्रबल प्रतिकार के अभाव में हिन्दू साम्राज्य को विनष्ट करता हुआ सारे देश में क्रमशः मुस्लिम साम्राज्य में बदल गया । किन्तु उन विषम परिस्थितियों में भी चंदेल शासकों ने मुसलमान आक्रमणकारियों का कठोर सामना करके अपनी संस्कृति और सत्ता की रक्षा के लिए पूरा प्रयत्न किया । 989 ई. में हिन्दू राज्य संघ में सम्मिलित होकर धंग ने सुबुक्तगीन से लड़ाई की थी । इसमें कालंजर, अजमेर और दिल्ली के राजाओं ने पंजाब के नरेश जयपाल का साथ दिया था । सन् 1008 में हिन्दू संघ ने आनन्दपाल के साथ मिलकर महमूद गजनवी के साथ युद्ध किया था । विद्याधर के शासन काल में महमूद गजनवी ने दो बार कालंजर पर आक्रमण किया । परमर्दि देव को तो पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण का सामना करना पड़ा था । 1202 ईस्वी में सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालंजर पर आक्रमण किया और इस बार उसे महोबा को अधिकृत करने में सफलता मिल गई ।

शत्रु राजाओं द्वारा कालंजर पर आक्रमण का शताब्दियों का

---

§1§ त्रिपुरदाह - 1/4.
§2§ रूपकषटकम् : अमात्य वत्सराज, पृ.सं. 119.
§3§ -वही- : पृ.सं. 38.

इतिहास वत्सराज के सामने था और अपनी आँखों देखा था । उन्होंने तत्कालीन समाज की अस्थिरता, अशांति, अन्याय, कदाचार, उत्पीडन, राजाओं का दुराग्रह-पूर्ण दंभ, कलह और नैतिक पतन आदि का चित्रण किया है । चारित्रिक पतन इतना कि किसी रूपवती कन्या के गुणों को सुनकर उसको अपनाने के लिए छल-बल का प्रयोग करना, युद्ध करके खून खराबा करना और जैसे भी हो सके, उसका अपहरण करना मात्र उद्देश्य रह गया था । मानो, यही उस समय शौर्य का प्रतीक था । वत्सराज ने अपने रूपकों में इन संघर्षों का आभास कराया है । तत्कालीन समाज की विचित्र दशा थी । सर्वत्र युद्ध का उन्माद छाया रहता था । राज्य-विस्तार या कन्याहरण निमित्त शौर्य प्रदर्शन की राजाओं की दुराग्रही प्रवृत्ति ने जैसे सब जगह से शांति का गला पकड़कर निकाल दिया हो :-

"दृष्टे बले बलीयसि संग्रामति शौर्यमस्यदाथे ऽपि ।
गलहस्तित इव सहसा निष्क्रामत्युपशमो हृदयात् ।।" §1§
—§रुक्मिणीह, 2/8§

रूपकद्वयम् में चेदिवंश के शिशुपाल के साथ कृष्ण और बलराम के संघर्ष, रोष और युद्ध के वर्णन में चन्देल, चेदि और कलचुरियों की इतिहास प्रसिद्ध पारस्परिक शत्रुता भी प्रतिध्वनित होती है । इतिहास की उस घटना का संकेत मिलता है, जिसमें चन्देल शासकों ने चेदि और कलचुरियों को पराजित कर, उनकी राजधानी त्रिपुरी पर अधिकार कर लिया था—

"विध्वस्तास्त्रिपुरी पुरीपरि वृद्धः प्राप्यैव सा रुक्मिणी ।"
§रुक्मिणीह 2/7§

सफल कलाकार परोक्षतः समय की अपेक्षाओं को दृष्टिगत रखते हुए तदनुरूप संदेश और उत्प्रेरणाएँ देते हैं । वत्सराज ने यही किया । "समुद्र मन्थन" की संरचना मानो कवि ने एकता- जो उस समय की अनिवार्य आवश्यकता थी और हमेशा रहेगी, का संदेश देने के लिए की हो । जैसे उस समय के भारतीय राजाओं के लिए वत्सराज का यह उद्बोधन हो—§2§

"औदार्य शौर्य रसिकः सुख्यन्तु भूपः" — समुद्र मंथन-3/14.

रूपककार वत्सराज चन्देल नरेशों की परंपरा, तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक

---

§1§ रूपककार वत्सराज – पृ.सं. 331, डॉ0 लक्ष्मण नारायण शुक्ल ।
§2§ मध्यकालीन संस्कृत नाटक : डॉ0 रामजी उपाध्याय, पृ. 229.

परिस्थितियों से सामान्यतः भलीभाँति परिचित थे ।

इसप्रकार "परमाल रासो" की ऐतिहासिकता की आधारभूमि स्पष्ट एवं असंदिग्ध है । यह बुंदेलखंड की धरती का सौभाग्य है कि जिसने वत्सराज जैसे प्रतिभाशाली सरस्वती पुत्र को जन्म दिया ।

<u>महामात्य वत्सराज</u> :- संस्कृति, कला और संस्कृत के विकास एवं संवर्धन की दृष्टि से उज्जयिनी, धारा विदिशा, दशपुर, ग्वालियर, रीवा आदि राजधानियों की भाँति ही बुंदेलखंड के इस अंचल में खजुराहो, ओरछा, महोबा, पन्ना और कालिंजर आदि स्थानों का विशेष महत्व रहा है । 18वीं शती के बुंदेलखंड के शासक सभासिंह के सभा-पंडित श्री शंकर दीक्षित, ओरछा के वीरदेवसिंह के आश्रय में सम्मानित श्री मित्र मिश्र और इससे भी पूर्व 11वीं शती के मध्यभाग में चन्देल वंशीय राजा कीर्ति वर्मन के आश्रित कवि कृष्ण मिश्र आदि विद्वानों की कृतियाँ इसके प्रमाण हैं । इसी परंपरा में चन्देल कालीन बुंदेलखंड के सबसे बड़े संस्कृत-साधक वत्सराज का नाम आता है ।

वत्सराज कालंजर के राजा परमाल के अमात्य थे तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यदेव वर्मन के समय में भी उसी पद पर प्रतिष्ठित रहे । परमर्दि देव का समय 1165 ई0 से 1203 ई0 तक एवं उनके पुत्र त्रैलोक्य वर्मन का समय 13वीं शती के मध्यभाग तक माना जाता है । अतः महामात्य वत्सराज का समय 12वीं शती का उत्तरार्द्ध 13वीं शती का पूर्वार्द्ध निश्चित होता है । इस उद्‌भट विद्वानाचार्य ने चंदेलवंश की कीर्ति-पताका को उजागर किया ।

<u>बनाफर वंशावली</u> :- बनाफर वंश आल्हा-ऊदल के कारण विशेष प्रख्यात हुआ था । एक हस्तलिखित पुस्तक में उनकी वंशावली इस प्रकार मिलती है । परमाल की विजयश्री का सीधा सम्बन्ध आल्हा-ऊदल की अवर्णनीय वीरता एवं साहस से है । अतएव उनके वंश [बनाफर] का उल्लेख करना आवश्यक ही नहीं अपितु अत्यावश्यक है । लक्ष्मण जी के दूसरे पुत्र सीतावरन पूरब में पुरैनियां में रहे और राजधानी बनारस में हुई, इसलिए वे बनाफर कहलाए । वंशावली निम्न है :—

1. लक्ष्मण जी, 2. सीतावरन, 3. समराज, 4. महाराज, 5. भूम सत्र, 6. अग्नितेज, 7. देवलराज, 8. श्यामराज, 9. हरिसिंह राई, 10. नौराज, 11. मानिक राज,

---

संदर्भित ग्रंथ : आल्हखंड शोध और समीक्षा : डॉ0 नर्मदाप्रसाद गुप्त, पृ. 31, 32

12. वीरम राज, 13. पदम राज, 14. सूरत राज, 15. श्याम राज §पुरैनियाँ छोड़कर ककरदेया में रहे§, 16. मैनिग राज, 17. अनूप शाह §दस रानियाँ : बड़ी गूजर की बेटी, भटावेर §अहेर§ भदौरिया की बेटी, गहवारन की बेटी, मैनपुरी के चौहान की बेटी, बूंदी के हाड़ा की बेटी, गहलोटन की बेटी, डाँडिया खेरे की बेटी, बैसन की बेटी, हाड़ुली कछवाहे की बेटी, सोमवंसिन की बेटी, सौलंखी की बेटी - इनके एक पुत्र हुआ§, 18. चिंतामन §यह खजुराहो में आकर रहे और चन्द्र-ब्रह्म चंदेल के मुसाहिब हुए तथा सत्तर हजार साठ राजाओं पर अमल किया । दो पुत्र हुए । कहते हैं कि चिंतामन ने अग्निदेवता से वर प्राप्त किया था, तब उनके वंशज वह्नि से बनाकर विशेष प्रख्यात हुए§, 19. अभिराज §मकरंद §अभिराज§ खजुराहो से जाकर खटोला के कौड़े में बसे । वहाँ उनका वंश है । छोटे मकरंद खजुराहो में रहे । मकरंद के एक पुत्र हुआ§, 20. दीपचंद, 21. भोगवराज, 22. धर्मराज, 23. पदमराज, 24. सुतराज, 25. मानराज, 26. श्यामराज, 27. पृथीराज -§इनके छैः पुत्र हुए- जुगराज सिंह, विसुन सिंह, हंसराज जालिम सिंह, नन्हें जू आदि§, 28. जुगराजसिंह, 29. बिजैराज, 30. सिवराज, 31. सभाराज, 32. हुदैराज, 33. गयंद राज, 34. हाथीराज, 35. महाराज, 36. दुर्गराज, 37. हंसराज, 38. बच्छराज, 39. दस्सराज -§ये महोबा में आकर रहे, जिनके दो पुत्र हुए§, 40. आल्हा-ऊदल §राजा पृथ्वीराज चौहान और परमाल चन्देल के बीच हुए युद्ध §सं. 1167-1182§ में ऊदल मारे गए । इनके कुँवर का नाम हरिंद था । इनका ममयावरा जूनागढ़ में सौलंखिन के यहाँ था । मामा कुँवर को ले गए और अपने राज में जागीर दी । उनके वंश के उदैपुर के करीब बसते हैं और इस देश में रावल कहलाते हैं । इसी युद्ध में गोरखनाथ आल्हा को तप करने ले गए । उनका लड़का इन्दल था§, 41. इन्दल - §आल्हा का पुत्र । इसको बिनैदीव बादशाह ने सम्वत् 1161 §1195 ई0§ में महोबा व सिहुड़ा का परगना जागीर में दिया§, 42. सूरसैन, 43. भगवानदास, 44. संमलदास, 45. नरसिंह भान - §ये लौड़ी में आकर रहे । इनके छैः पुत्र हुए - गजन जू, बदन जू आदि । इनके वंशज कलहरा में हैं । निवानी इनके वंशज लौड़ी में हैं, कुँजलमाह, मौलसी, डोंगर राय - इनके वंशज बारीगढ़, जेवराहा, महोबा के परगने और चरखारी के हटवा परगने में बहुत हैं§, 46. गजन जू - §इनके चार पुत्र हुए - हरी, बसावन, श्रुत, मोलक§, 47. श्रुत, 48. केसी - §इनके तीन पुत्र हुए -

---

द्रष्टव्य : वही : पृ. 31, 32.

इलाराय, मुकुटमन – इनके वंश के कम्हिरिया में जमीदार हैं, मनकटराय – वंशज चितहरी धर्मपुर में जमीदार है§, 49. दूलाराय – तीन पुत्र हुए । धीरजसिंह – इनके वंश के कसार के जमीदार है, बाघराज – इनके वंशधर गुढ़ा के 1/3 जमीदार हैं, रतनभान – मुँडेर के जमीदार । इनके एक पुत्र हुआ ।, 50. धीरजसिंह, 51. परसोत्तम राय – कुँवर सोनेशाह के समय में जमींदार थे । §सन् 1704 ई. §, 52. मीन राय – चार पुत्र हुए– हरई साह, केसौराम, जैसिंघ राय, छीताराय, 53. सीताराम, 54. खेत, 55. पूरन – चार पुत्र हुए– बहे, परताप, दूलाराम, बिहारी ।

परमाल रासो §आल्हखंड§ का रचयिता महाकवि जगनिक एवं उसका काव्य-काल :-

आल्हखंड के रचयिता जगनिक :-

आल्हखंड लोक प्रबंध है या साहित्य प्रबन्ध या गाथा । यह विवाद बहुत पहले से हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के बीच चलता रहा है और उसी के साथ आल्हखंड के रचयिता के अस्तित्व का प्रश्न उठता रहता है । मूलकृति न मिलने के कारण विवाद और प्रश्न स्वाभाविक हैं । आल्हखंड किसी भी काव्य रूप में हो, उसे रचयिता के कृतत्व को नकारा नहीं जा सकता । लोक प्रबन्ध या साहित्यिक प्रबन्ध होने से रचयिता की गरिमा कम नहीं होती, लेकिन गाथा मान लेने पर विद्वान समीक्षक बड़ी दुविधा महसूस करते हैं, क्योंकि उन्होंने पश्चिमी विद्वानों– राबर्ट ग्रेव्स, सिजविक, कीटीज, गुमर आदि का अनुसरण करते हुए उनके निष्कर्षों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है । लोक गाथा की पहली विशेषता यही मानी जाती है कि उसका रचयिता अज्ञात हो । कुछ विद्वान तो इसे लोकरचित कहकर रचयिता की संज्ञा ही समाप्त कर देते हैं । इसी कारण गाथा प्रसिद्ध समीक्षक एक ओर यह कहते हैं कि आल्हा गाथा का रचयिता जगनिक था, तो दूसरी ओर यह भी कि वह वास्तविक अर्थ में लोकगाथा है क्योंकि इसका रचयिता अज्ञात है । यह दोनों विचारधाराएँ रचयिता के अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न के रूप में उपस्थित होती हैं । एक और अजीब बात है कि हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग §हिन्दी का लोक साहित्य§ में मैथिली, मगही, भोजपुरी, कनौजी, कौरवी आदि लोक-भाषाओं में तो "आल्हा" की खूब चर्चा हुई है, किन्तु बुन्देली लोक साहित्य के लेखकों ने इसका उल्लेख करना भी उचित नहीं समझा । इन सारी दुविधाओं और भ्रांतियों का कारण यह प्रतीत होता है कि हमारे लोक साहित्य के विद्वान आचार्य

लोक साहित्य की मान्यताओं के लिए अपने लोक और लोक साहित्य का आँचल छोड़कर पश्चिम का मुख जोहते हैं ।

इस संबंध में सामान्य किन्तु महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि जब विद्वान लोकमुख में जीवित काव्य को असली मानते हैं, तो फिर उसी लोक-मुख में आजतक प्रचलित तथ्य को भी उन्हें प्रामाणिक समझना चाहिए । बुन्देली जनपदों की बहुत प्राचीन काल से यह लोक मान्यता रही है कि "*आल्हा*" का रचयिता जगनिक कवि ही है । इतना ही नहीं, "महोबा रासो" ‖1526 ई. के लगभग‖ आल्हा रासो ‖17वीं शती‖ दलपति रायसी ‖1707 ई.‖ जगतपाल - दिग्विजय ‖1722-23 ई.‖ वीर विलास ‖1741 ई.‖, आल्हा ‖19वीं शती का उत्तरार्द्ध‖, पृथ्वीराज रायसौ तिलक ‖1919 ई.‖ आदि सभी उपलब्ध ग्रंथ साक्षी हैं । अतएव अब इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है ।‖1‖

<u>जीवन-वृत्त</u> :-

आल्हखंड जैसे लोक प्रसिद्ध काव्य के रचयिता महा कवि जगनिक का जीवन-वृत्त अब तक लगभग उपेक्षित-सा रहा है । साहित्य के इतिहास-कारों ने कवि के जीवन वृत्त के विषय में कोई प्रयास या चिंता नहीं की । कुछ विद्वान तो यह शंका करते हैं, कि जगनिक नाम का कोई कवि था, क्योंकि वे आल्हखंड का रचयिता कोई विशेष कवि नहीं मानते । दूसरे विद्वान, जो जगनिक के अस्तित्व को स्वीकारते हैं, जगनिक, जगनायक, जयानक, जगनसिंह, जगमणि आदि में भेद नहीं कर पाते । वस्तुतः प्रामाणिक सामग्री के अभाव में जगनिक के संबंध में अनेक भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गई हैं और आल्हखंड के नायक की तरह कवि का व्यक्तित्व भी विवादास्पद बन गया है । जगनिक के जीवन के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० राम कुमार वर्मा, डॉ० टीकमसिंह तोमर आदि साहित्यकारों ने केवल इतना ही उल्लेख किया है कि-- जगनिक कालंजर-नरेश परमाल के दरबार में एक भाट थे, जिन्होंने वीर आल्हा-ऊदल के चरित्र का विस्तृत वर्णन किया है । उन्होंने जनश्रुति के आधार पर यह चर्चा की थी, किन्तु उसके संबंध में अधिक खोज करने का प्रयत्न नहीं किया । जार्ज ग्रियर्सन ने जगनिक को चन्देल नरेश परमर्दिदेव का भांजा माना है ।‖2‖ लेकिन इस मान्यता की पुष्टि में

- -

‖1‖ संदर्भित ग्रंथ : आल्हखंड शोध और समीक्षा : डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त, पृ.सं. 33.
‖2‖ द ले ऑफ आल्हा : इंट्रोडक्शन बाई, सर जार्ज ग्रियर्सन, पृ. 1.

कोई प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया । ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रियर्सन आल्हखंड के "आल्हा-मनौआ" खंड में उल्लिखित जगनायक या जगनिक को ही, जो कि आल्हा को मनाने के लिए कान्यकुब्ज {कन्नौज} गए थे, आल्हखंड का रचनाकार मान लिया है । आल्हखंड में जगनिक अनेक बार प्रयुक्त हुआ है । जगनायक या जगनिक {जगनायक का संक्षिप्त} राजा परमाल की पुत्री चन्द्रावलि {जो कि बौरीगढ़ के राजकुमार इन्द्रसेन या इन्द्रजीत की रानी थी} का पुत्र था । इस रूप में आल्हा का भांजा कहा जा सकता है ।

माहिल के भाई की मृत्यु के बाद जगनेरी का किला जगनिक को दे दिया गया था ।{1} यह जगनिक क्षत्रिय सामंत था, कवि और भाट नहीं । लेकिन यह अधिक संभव लगता है कि "आल्हा-मनौआ" का जगनिक कवि और भाट ही था, क्योंकि कवि जगनिक ही ऐसे गुरुतर कार्य को संपादित कर सकता था दूसरा कोई क्षत्रिय सामंत नहीं । इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि आल्हखंड के किसी गायक ने "आल्हा मनौआ" के जगनिक को चन्द्रावलि का पुत्र जगनायक समझ लिया हो और उसका यह परिवर्तन निरंतर उद्धृत होता रहा हो और भ्रांति का कारण बन गया हो ।

श्री केशव चन्द्र मिश्र ने चन्देलों के इतिहास की खोज करते हुए आल्हखंड और उसके रचयिता जगनिक को ऐतिहासिक आधार देने का प्रयत्न किया है । उन्होंने पृथ्वीराज चरितम् के रचयिता जयानिक और जगनिक को एक मान लिया है । जबकि जयानिक कश्मीर-निवासी संस्कृत-कवि था । "पृथ्वीराज चरितम्" में पृथ्वीराज को अवतार माना गया है । अतएव पृथ्वीराज की प्रशस्ति करने वाला कवि जयानक और आल्हा-ऊदल की शौर्यगाथाएँ गाने वाला जगनिक एक व्यक्ति हो ही नहीं सकता है, क्योंकि चौहानों और चंदेलों में परस्पर संघर्ष चलता रहा । इतिहास इस बात का साक्षी है ।{2}

श्री लोकनाथ द्विवेदी "सिलाकारी" ने अपने ग्रंथ के प्रथम अध्याय में जगनिक का जीवनवृत्त देने का प्रयत्न किया है, परन्तु उन्होंने महोबा समय {परमाल रासो} तथा आल्हखंड में वर्णित विविध जगनिक नामों को एक मान लिया है ।{3} वे कवि

{1} आल्हखंड : खेमराज, श्रीकृष्णदास प्रकाशन भूमिका, पृ. 32.
{2} चन्देल और उनका राजत्व-काल : श्री केशवचंद मिश्र, पृ.सं. 78.
{3} महाकवि जगनिक कृत : लोकगाथा काव्य आल्हा - लोकनाथ द्विवेदी "सिलाकारी" पृ.सं. 7-14.

जगनिक के व्यक्तित्व की खोज नहीं कर सके ।

डॉ0 महेन्द्र प्रताप सिंह ने जगनिक का नाम जगनसिंह माना है और उसे भाट न मानते हुए पंवार कहा है ।§1§ परन्तु उन्होंने अपने कथन की कोई प्रमाणिक पुष्टि नहीं की है । खैरागढ़ तहसील के जगनेर स्थान की किसी प्रचलित किंवदंती के आधार पर ही निर्णय ले लिया है । जगनेरी का एक क्षत्रिय सामंत था, जो कि महोबा युद्ध में मृत्यु वरण करता है । यह भी डॉ0 सिंह का स्त्रोत हो सकता है, परन्तु जगनिक कवि तो ग्रंथ-रचना के लिए इस युद्ध के बाद भी जीवित रहा था । दूसरे अन्य ग्रंथों के अलावा सन् 1707 ई. के करीब कवि जोगीदास कृत "दलपत रायसो" से भी प्रमाणित हो गया है कि जगनिक भाट थे ।§2§ अतएव अब किसी भ्रांति के लिए कोई स्थान नहीं है ।

आल्हखंड के जागन, जगमणि आदि वीर सामंत थे और परमर्दिदेव की सेना में नायक या सेनापति रहे होंगे । उनका सम्बन्ध आल्हखंड के रचयिता जगनिक से जोड़ना उपयुक्त नहीं है । इतना अवश्य है कि जगनिक आल्हखंड की घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी पात्र था । अतएव आल्हखंड में उसका व्यक्तित्व उभरना कोई असंभव बात नहीं है । "पृथ्वीराज राउस" में भी चन्दवरदाई एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है । वास्तव में "आल्हा-मनौआ" का जगनिक ही महाकवि जगनिक है । वह महाराज परमर्दिदेव की पटरानी का संदेशवाहक है । वह युद्ध-क्षेत्र में अपने शौर्य का प्रदर्शन भी करता है और राज्य की गंभीर समस्याओं में परामर्श भी देता है । "पृथ्वीराज रासो" के महोबा समय में एवं डॉ0 श्याम सुन्दरदास द्वारा संपादित "परमाल रासो" में जगनिक को भाट कहा गया है ।§3§ जगनिक को जगनायक, जगनक और जगन भी लिखा गया है । "परमाल रासो" में ग्रंथ-रचनाकार के संबंध में एक और पंक्ति— "जगन कह्यो करि ग्रंथ" में जगन §जगनिक§ ग्रंथकार प्रतीत होता है और "आल्हा मनौआ" के जगनिक के लिए जगन का प्रयोग भी अन्यत्र द्रष्टव्य है ।§4§

जनश्रुति के अनुसार भी यह सत्य प्रमाणित होता है । कन्नौज से आल्हा-

---

§1§ ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल, परिशिष्ट 2ग, पृ. 325.
§2§ दलपति रायसो : जोगीदास, छन्द - 276.
§3§ परमाल रासो - संपा. डॉ.श्यामसुन्दरदास, सं. 1976, पृ. 90, छन्द 41 एवं महोबा समय : छन्द 137, 189.
§4§ -वही- : पृ.सं. 100, छन्द-80.

ऊदल को मनाकर लाना, जगनायक {आल्हा का भांजा} की क्षमता की बात नहीं है। यह कार्य आल्हखंड के रचयिता महाकवि जगनिक के सामर्थ्य की बात थी। कवि जगनिक आल्हा के शौर्य से इतना प्रभावित था कि राजा परमर्दिदेव के दरबार में रहते हुए भी उसने चंदेल की प्रशस्ति में अत्यधिक मनोयोग का परिचय ही नहीं दिया, बल्कि बनाफर वीर आल्हा को अपने ग्रंथ का नायकत्व प्रदान किया। इससे यह अनुमान लगाना सहज है कि आल्हा भी जगनिक का सम्मान करते होंगे। इसलिए बनाफर बन्धुओं को महोबा आकर पृथ्वीराज चौहान से युद्ध करने के लिए अभिप्रेरित करने का दायित्व जगनिक को सौंपा गया था। कवि ने उनके हृदय को ऐसा स्पर्श किया, कि वे अपने अपमान को भूलकर मातृभूमि पर बलिदान होने के लिए तैयार हो गए। "पृथ्वीराज राउत" के महोबा समय में जगनिक को विद्वान दूरदर्शी स्वीकार किया गया है, इसलिए उसे बनाफर-वीरों को अवधि के अन्तर्गत लाने का कार्य सौंपा गया था। यहां तक कि जगनिक कान्ह से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त करता है। {1}

"परमाल रासो" में भी जगनिक शास्त्रज्ञ, मंत्रसाधक, सन्मानित राजकवि एवं वीर योद्धा है। वह महारानी मल्हना का अन्तरंग एवं राज्य की राजनीतिक स्थिति से पूर्ण परिचित है। रानी जगनिक का अत्यधिक सम्मान करती थी और कठिन से कठिन समस्या का निदान कर सकने में उन्हें सक्षम मानती थी। {2} तीनों ग्रंथों-परमाल रासो, पृथ्वीराज राउत {महोबा समय} चन्देल और उनका राजत्व काल, में जगनिक का आल्हा को प्रेरित कर महोबा लाने तथा कान्यकुब्ज नरेश जयचन्द से सन्धि करने के कार्य-व्यापार समानता रखते हैं। इन घटनाओं से कवि जगनिक का व्यक्तित्व चरम उत्कर्ष पर पहुँच जाता है। यह गरिमा कवि जगनिक की है और किसी की नहीं। कहा जाता है कि जगनिक की मृत्यु चन्देल-चौहानों के युद्ध में होती है। परन्तु यह प्रश्न उठता है कि कवि की मृत्यु के उपरान्त ग्रंथ-रचना किसने की? वस्तुतः युद्ध में सेनानायक और जगनेरी के सामंत जगनायक की मृत्यु का वर्णन किया गया है। कवि जगनिक ने तो इसी युद्ध के उपरान्त अपने काव्य की रचना की। अतएव जगनिक कवि की मृत्यु उसके बाद हुई होगी।

<u>जन्म स्थान</u> :- कवि जगनिक के जन्म और निवास स्थान के संबंध में कोई प्रामाणिक आधार नहीं हैं। कुछ विद्वान उनकी भाट जाति के आधार पर उन्हें राजस्थान का

{1} पृथ्वीराज रासो - पृ.सं. 26 87.
{2} "परमाल रासो - संपा. श्याम सुन्दरदास, पृ. 98, छन्द सं. 66-68.

निवासी सिद्ध करते हैं । उनका मत यह है कि जीविकोपार्जन के लिए वे बुन्देलखंड गए और चन्देल नरेश ने उनकी प्रतिभा और गुणों से प्रभावित होकर उन्हें अपने दरबार में स्थान दे दिया । परन्तु इससे वे राजस्थान के निवासी सिद्ध नहीं होते । दूसरी विशेष बात यह है कि जगनिक के काव्य की भाषा और शैली बुन्देली है, राजस्थानी नहीं । उस समय राजस्थान में अपभ्रंश का जितना प्रभाव था, उतना मध्यदेशीय भाषा का नहीं । अतएव यह धारणा भ्रांतिपूर्ण है ।

कुछ विद्वान इन्हें चन्देरी का निवासी मानते हैं, परन्तु इसका भी कोई ठोस प्रमाण नहीं है । डॉ० महेन्द्रप्रताप का मत है कि "जगनिक कवि आगरा जिले के खैरागढ़ तहसील का निवासी था और जगनसिंह के नाम पर ही उनके जन्म-स्थान को जगनेर नाम मिला है ।§1§ आल्हखंड में वे जगनेरी ग्राम के सामंत के रूप में वर्णित है । परन्तु जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि यह वर्णन रचनाकार के परिचय के अभाव में जगनेरी के क्षत्रिय सामंत से §जिसकी मृत्यु महोबा के युद्ध में हो जाती है§ जोड़ दिया गया है । जब तक उनके जन्म-स्थान की सही खोज नहीं होती, विविध प्रश्नों को प्राश्रय देना व्यर्थ है । इतना निश्चित है कि वे महोबा या महोबा के आसपास की बनाफरी बुन्देली भाषा-भाषी स्थान के निवासी थे । महोबा में एक ब्रह्मभट्ट परिवार श्री बिहारीलाल भट्ट का है और वे स्वयं को जगनिक का वंशज कहते हैं, परन्तु साक्षात्कार के दौरान उनके पास भी कोई प्रामाणिक साक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका ।

<u>जगनिक का काव्य काल</u> :- जगनिक के काव्य काल का निर्धारण करना भी सरल नहीं है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सं. 1230 §सन् 1163§ निर्धारित किया है ।§2§ किन्तु यह उचित नहीं है । चन्देल नरेश परमर्दिदेव का शासन काल 1165 ई. से 1202 ई. तक माना गया है । अतएव महाकवि जगनिक भी इसी अवधि में राजकवि के पद को सुशोभित करता रहा होगा । चंदेल और चौहानों का युद्ध मदनपुर अभिलेख के अनुसार 1182-83 ई. में हुआ और उसी के उपरान्त आल्हखंड की रचना हुई होगी, क्योंकि आल्हखंड की मुख्य घटना यही है । इसी घटना को केन्द्र बिन्दु मानकर कवि ने अपने काव्य के कथाचक्र को विकसित किया है । संभवतः इसीलिए ग्रियर्सन ने ग्रंथ का रचनाकाल सन् 1191 ई. माना है ।§3§ परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि

---

§1§ ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल, परिशिष्ट 2ग - पृ. 325.
§2§ हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 53.
§3§ द ले आफ आल्हा : सर जार्ज ग्रियर्सन, पृ.सं. 23.

जगनिक इससे पूर्व रचना नहीं करता था । आल्हखंड के महाकाव्यत्व आयाम को देखकर यह अनुमान सही लगता है कि उसका रचनाकाल कम से कम 20-25 वर्ष पूर्व रहा होगा । दूसरी बात यह भी है कि जगनिक का चन्देलों के दरबार में स्थान प्राप्त करने का कारण उसकी काव्य-चमत्कृति या प्रशस्ति मूलक काव्य रचना ही रहा होगा । इससे स्पष्ट है कि जगनिक का काव्यकाल 1165 ई. या उससे पहले से प्रारम्भ होना निश्चित है । सन् 1202-1203 ई. में कालिंजर पर कुतुबुद्दीन का आक्रमण हुआ, लेकिन "परमाल रासो" में इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है । इससे प्रतीत होता है कि जगनिक या तो 1203 ई. से पूर्व कहीं चला गया था या 1203 के युद्ध में मारा गया था ।

इस आधार पर "परमाल रासो" का रचनाकाल 1182 ई. से लेकर 1202 ई. के मध्य ठहरता है और जगनिक का काव्यकाल 1160 से लेकर 1202 के मध्य निर्धारित किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त यदि "महोबा समय को पृथ्वीराज रासो का एक खंड माना जाय, तो उसके रचनाकाल को इस संदर्भ में देखना होगा । 1193 ई. के युद्ध में पृथ्वीराज और उसके दरबारी कवि चन्दबरदाई की मृत्यु हो जाती है । इस लिए निश्चित है कि "पृथ्वीराज रासो" के "महोबा समय" की रचना 1182 ई. से 1193 ई. के बीच में हुई होगी और लगभग इसी समय "परमाल रासो" {आल्हखंड} रचा गया होगा । 1193 का युद्ध भारतीय इतिहास की प्रमुख घटना थी और ऐसा असंभव लगता है कि जगनिक उससे परिचित न हो अथवा दरबारी या राजकवि होने के नाते उसकी दृष्टि अपने काव्य "परमाल रासो" की ओर न रही हो । इस दृष्टि से आल्हखंड या "परमाल रासो" की रचना 1182 ई. और 1193 के बीच की सिद्ध होती है ।{1}

{1} बुन्देलखंड का मध्ययुगीन काव्य : एक ऐतिहासिक अनुशीलन - डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त, अप्रकाशित, पृ.सं. 129.

-=:*****:=-